प्रश्न : मैं ईश्वर का अनुभव कैसे कर सकता हूं? इस अनुभव के बिना जीवन का क्या उद्देश्य है?

कृष्णमूर्ति : क्या मैं जीवन को सीधे-सीधे समझ सकता हूं, अथवा मुझे अपने जीवन को अर्थ प्रदान करने के लिए किसी तत्त्व का अनुभव करना होगा? क्या आप समझ रहे हैं? क्या सौंदर्य की कदरदानी के लिए मुझे उसका उद्देश्य समझना होगा? क्या प्रेम का एक कारण होना चाहिए? और यदि प्रेम का कोई कारण हो, तो क्या वह प्रेम होगा? प्रश्नकर्ता कहता है कि यदि उसे अपने जीवन को कुछ अर्थ प्रदान करना है, तो उसके लिए कुछ अनुभव घटित होना चाहिए--इसका तात्पर्य यह है कि उसका जीवन अपने आप में महत्त्वपूर्ण नहीं है? अतः वह वास्तव में ईश्वर की तलाश में जीवन से पलायन कर रहा है; शोक से, सौंदर्य से, कुरूपता से, क्रोध, क्षुद्रता, ईर्ष्या, व सत्ता की आकांक्षा से, जीने की असाधारण जटिलताओं से पलायन कर रहा है। यह सब ही जीवन है, तथा चूंकि वह इस सब को समझ नहीं पाता, इसलिए कहता है, ''मैं कुछ और महान वस्तु खोजूंगा, जो मेरे जीवन को अर्थ प्रदान कर सके।''

कृपया सुनें कि मैं क्या कह रहा हूं, परंतु मात्र शाब्दिक, बौद्धिक रूप से नहीं, क्योंकि तब इसका कोई मतलब नहीं होगा। आप इस बारे में ढेर सारे शब्द बुन सकते हैं, इस धरती की समस्त पवित्र पुस्तकें पढ़ सकते हैं, लेकिन वह व्यर्थ होगा क्योंकि वह आपके जीवन से, आपके दैनंदिन अस्तित्व से जुड़ा हुआ नहीं होगा।

क्या है हमारा जीवन? वह क्या है, जिसे हम अपना अस्तित्व कहते हैं? दार्शनिक रूप से नहीं, सहज रूप से देखें तो यह सुख और पीड़ा के अनुभवों की शृंखला है तथा हम सुखों को पकड़े रह कर पीड़ा को टालना चाहते हैं। शक्ति का सुख, सत्ता की बड़ी दुनिया में बड़ा आदमी होने का सुख, अपने छोटे से पति या पत्नी पर आधिपत्य जमाने का सुख, पीड़ा, हताशा, महत्त्वाकांक्षा के साथ आने वाली दुश्चिंता, महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की चाटुकारिता करके लाभ उठाने की कुरूपता आदि--इस सबसे ही हमारा रोज़ का जीवन निर्मित होता है। मतलब यह कि जिसे हम जीवन कहते हैं, वह ज्ञात के क्षेत्र के भीतर स्मृतियों की शृंखला है, और यदि मन ज्ञात से मुक्त न हो, तो ज्ञात समस्या बन जाता है। ज्ञात के क्षेत्र में कार्य करते हुए--ज्ञात अर्थात ज्ञान, अनुभव और उस अनुभव की स्मृति--मन कहता है, ''मुझे ईश्वर को जानना चाहिए।'' तो यह अपनी परंपराओं, धारणाओं, अपने संस्कारों के अनुसार एक सत्ता का प्रक्षेपण करता है, जिसे यह *ईश्वर* कह लेता है। परंतु यह सत्ता ज्ञात का ही परिणाम है, वह अब भी समय के क्षेत्र के भीतर ही है।

जब मन ज्ञात से पूरी तरह मुक्त होता है, तभी आप स्पष्टता, सच्चाई और यथार्थ अनुभव के साथ पता लगा सकते हैं कि ईश्वर है अथवा नहीं है। यह निश्चित है कि ऐसा कुछ जिसे ईश्वर अथवा सत्य कहा जा सके, वह पूर्णतः नवीन होता है, आपकी पहचान के दायरे में नहीं होता; और यदि वह मन, ज्ञान से, अनुभव से, विचार से, संचित किये हुए सद्गुणों से इस तक जाने की कोशिश करता है, तो वह ज्ञात के क्षेत्र में रहते हुए अज्ञात को ग्रहण करने की चेष्टा कर रहा होता है जो संभव ही नहीं है। मन मात्र यही कर सकता है कि इस बात की जांच करे कि स्वयं को ज्ञात से मुक्त करना संभव है अथवा नहीं। ज्ञात से मुक्त होना अतीत के सारे प्रभावों, परंपरा के सारे भार से मुक्त हो जाना है। मन अपने आप में ज्ञान की ही उपज है, इसे समय द्वारा 'यह मैं' और 'यह मैं नहीं' के रूप में गढ़ा गया है, जो द्वैत का द्वंद्व ही है। यदि ज्ञात चेतन स्तर पर और अचेतन में भी पूरी तरह समाप्त हो जाता है और मेरा कहना है, और यह बात मैं केवल सिद्धांततः नहीं कह रहा, कि इसका समाप्त होना संभव है--तब आप कभी नहीं पूछेंगे कि ईश्वर है अथवा नहीं है, क्योंकि ऐसा मन अपने आप में ही अपरिमेय होता है; प्रेम की भांति, इसकी अपनी चिरंतनता होती है।

नई दिल्ली] 31 अक्टूबर 1956